संकट और समाजशास्त्रीय अनुकल्पना[1]

मैत्रेयी चौधरी

अनुवाद: आयुषी शर्मा[#],
त्रिभू नाथ दुबे[##]

कोविड-19 संकट के बीच जब दुनिया लॉकडाउन में जकड़ी हुई है, ऐसे समय में भविष्य की कल्पना कर पाना सहज नहीं है। एक ऐसी दुनिया जो गति और निरंतर गतिशीलता की अभ्यस्त थी, उसे एकाएक ठहर जाने और जड़वत हो जाने को विवश कर दिया गया है। जिनके पास विशेषाधिकार हैं, वे अपने घरेलू संसार में सिमट सकते हैं और संभवतः अपने नीरस दैनिक जीवन की झलक सोशल मीडिया पर साझा कर सकते हैं। परन्तु जिनके पास यह सुविधा नहीं है, वे आजीविका से वंचित, तिरस्कृत, बेसहारा और भूखे पड़े हैं।[2]

[1] यह लेख 'डूइंग सोशियोलॉजी' ब्लॉग पर प्रकाशित लेख 'क्राइसिस ऐंड द सोशियोलॉजिकल इमैजिनेशन' – मैत्रेयी चौधरी' https://doingsociology.org/2020/05/03/crisis-and-the-sociological-imagination-maitrayee-chaudhuri/ का साभार अनुवाद है।

[2] वर्ल्ड बैंक की एक रिपोर्ट - 'कोविड-19 क्राइसिस थ्रू अ माइग्रेशन लेंस'- के अनुसार, आंतरिक प्रवासन की मात्रा अंतरराष्ट्रीय प्रवासन की तुलना में लगभग ढाई गुना अधिक है। भारत में लॉकडाउन ने देश के लगभग 40 मिलियन (4 करोड़) आंतरिक प्रवासियों की आजीविका पर गंभीर प्रभाव डाला है। कुछ ही दिनों में लगभग 50,000–60,000 लोग शहरी केंद्रों से अपने ग्रामीण मूल स्थानों की ओर लौटे। https://www.thehindu.com/news/international/lockdown-in-india-has-impacted-40-million-internal-migrants-world-bank/article31411618.ece

समाजशास्त्री सी. राइट मिल्स ने 1959 की अपनी प्रसिद्ध कृति *"दि सोशियोलॉजिकल इमेजिनेशन"*[3] में बताया है कि हमारे जीवन अवसर हमारे जीवित अनुभवों और इतिहास के अंतर्मिलन द्वारा निर्मित होते हैं। वर्तमान महामारी के बीच यह समझना कठिन नहीं कि व्यक्तिगत संकट वास्तव में एक जन समस्या है (मिल्स 1959)। परन्तु 'सामान्य' समय में, समाजशास्त्रीय कल्पना को प्रयोग में लाना उतना भी आसान नहीं होता। हमारा जीवन-वृत्त केवल खुद की ही कथा प्रतीत होता है। हम ये जल्दी ही सीख जाते है कि हमारी सफलताओं का श्रेय हमें ही जाता है। आश्चर्य नहीं कि हम में से अधिकांश यह भी मान बैठते हैं कि विफलताओं का उत्तरदायित्व भी व्यक्तिगत ही होता है।

समाजशास्त्र इस पर भिन्न सुझाव देता है। समाजशास्त्र के भीतर कई विचारधाराएँ है, अधिकांश समाजशास्त्री (भिन्न-भिन्न विचारों के साथ) इस बात से सहमत होंगे कि सामाजिक जीवन केवल व्यक्ति की स्वतंत्र इच्छा (एजेंसी) का ही नहीं बल्कि सामाजिक बाधाओं का भी परिणाम होता है। हालाँकि समकालीन समय में प्रतिबंध का विचार हमारी चेतना और संवेदना दोनों क खिलाफ है। हमारी स्वतंत्रता काफी स्वाभाविक प्रतीत होती है। कई अन्य लोगों के लिए तो स्वतंत्रता कभी हाथ न आनेवाली वस्तु है, बल्कि आकांक्षा की वस्तु भी नहीं है। स्वतंत्रता की उपलब्धता ही सिर्फ असमान नहीं है, बल्कि इसकी अवधारणा और अंतर्वस्तु भी अलग-अलग समाजों में और एक ही समाज के लोगों के बीच भिन्न-भिन्न होते हैं।

समाजशास्त्र इन्हीं सामाजिक अन्तःक्रियाओं और विश्वासों के भिन्न रूपों का अध्ययन है। तात्कालिक स्तर पर यह मानव जीवन के सामान्य, साधारण, और रोज की क्रिया-कलापों; जो मानव जीवन का हिस्सा है; का अध्ययन है। अधिकतर हम या तो समाज की 'छिपी हुई संरचनाओं' से लगभग अनजान रहते हैं, या यूँ कहें कि इसके 'पर्दे के पीछे' क्या है, इसका हमें पता ही नहीं होता।[4] समाजशास्त्र की चेतना हमें इनकी मौजूदगी का एहसास कराती है, और हमें इस असिद्ध वास्तविकता को गहरायी से देखने के लिए आमंत्रित करती है। यह 'आर-पार देखने' की एक प्रक्रिया से जुड़ी होती है। सामाजिक संरचनाओं के दिखावटी रूप की तुलना घरों की बाहरी बनावट से करते हुए पीटर बर्जर अपनी प्रसिद्ध कृति *इनविटेशन टू सोशियोलॉजी*[5] में कहते हैं कि, 'घरों के बाहरी रूप हमें उन सामाजिक रहस्यों के बारे में नहीं बताते जो इनकी आड़ में छिपे होते हैं।' कई बार कोई आपदा इन छिपी हुई 'सामाजिक रहस्यों' को अचानक सामने ला देती है।

> *जिन लोगों ने युद्धकालीन बमबारी का अनुभव किया है... वे प्रायः उस चौंका देने वाले दृश्य को याद कर सकते हैं जब किसी मकान पर रात में गिरे बम ने उसे इस तरह चीर डाला हो कि मानो घर बीच से साफ-साफ दो हिस्सों में कट गया हो, मुखभाग पूरी तरह उखड़ गया हो और जो कुछ भीतर छुपा था वह दिन के*

---

[3] मिल्स, सी. डब्ल्यू. (1959). द *सोशियोलॉजिकल इमैजिनेशन*. न्यू यॉर्क: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

[4] इर्विंग गोफ़मैन अपनी पुस्तक द *प्रेज़ेन्टेशन ऑफ़ सेल्फ़ इन एवरीडे लाइफ़* में लिखते हैं कि नेपथ्य वह जगह होती है जहाँ "अभिनेता विश्राम कर सकता है; वह अपनी प्रस्तुति को छोड़ सकता है, अपने संवादों को बोलना छोड़ सकता है और अपने चरित्र से बाहर आ सकता है"' (गोफ़मैन, एरविंग. (1956), द *प्रेज़ेन्टेशन ऑफ़ सेल्फ़ इन एवरीडे लाइफ़*. एडिनबरा: यूनिवर्सिटी ऑफ़ एडिनबरा)।

[5] बर्जर, पीटर. (1963). *इन्विटेशन टू सोशियोलॉजी: ए ह्यूमैनिस्टिक पर्सपेक्टिव*. डबलडे.

उजाले में बेरहमी से उजागर हो गया हो। लेकिन अधिकांश शहरों में, जहाँ हम सामान्यतः रहते हैं, वहाँ इन मुखावरणों (फसाड्स) को जानने-समझने के लिए स्वयं जिज्ञासापूर्ण ढंग से भीतर झांकना पड़ता है।

इसी प्रकार, कुछ ऐतिहासिक परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं जब समाज के मुखौटे (फसाड्स) हिंसक रूप से चीर दिए जाते हैं, और सिवाय अत्यंत जिज्ञासा-रहित लोगों के, सभी को यह देखने के लिए मजबूर होना पड़ता है कि उन मुखौटों के पीछे हमेशा से एक वास्तविकता मौजूद थी (बर्जर, 1963)। महामारी एक ऐसी ही ऐतिहासिक परिस्थिति है।

हमारी रोज़मर्रा की प्रश्नातीत (टेकेन फॉर ग्रांटेड) दिनचर्या न ही दिनचर्या रह गयी है न ही प्रश्नातीत। सामान्य कार्य भी कठिन लगते हैं। सब्जियां खरीदना भी एक भारी काम है। भले ही हमें यह भ्रम न रहा हो कि दूध सीधे फ्रिज से आता है या सुपरमार्केट से[6], परन्तु हम में से कई लोगों को सप्लाई चेन के बारे में लॉकडाउन, जिसने हमारे आस पास की दुकानों तक सामान के निर्बाध प्रवाह को बाधित कर दिया, से पहले तक कोई जानकारी नहीं थी।

हम अब यूँही सब्ज़ियाँ खरीदने नहीं जा सकते, बाल कटवाने के लिए नहीं जा सकते, सहजता से कक्षा में प्रवेश नहीं कर सकते, या किसी रेस्तरां में यूँही नहीं चले जा सकते। हम यह विश्वास से नहीं कह सकते कि यह सब कब तक संभव हो पायेगा। रोज़गार[7], भविष्य और योजनाएँ - सब कुछ ठप्प पड़ा हुआ है, और हालात दिन-ब-दिन और गंभीर होते जा रहे हैं।

कोविड-19 ने हमारे जीवन को अस्त-व्यस्त करने के साथ-साथ हमारी 'सामाजिक संरचनाओं' के मुखौटों को भी चीर डाला है। एक ही झटके में, हमने यह समझ लिया कि सामाजिक मानवशास्त्र में 'अपरिचयकरण' (डी-फेमेलिअराइज़ेशन) का क्या अर्थ होता है - जब जाना-पहचाना, परिचित संसार अचानक अपरिचित, अजनबी और अजीब लगने लगा।

भारत में हम स्तिथि को गंभीरता से समझ पाते, उससे पहले ही हमने पश्चिमी देशों में सुपरमार्केट से टॉयलेट पेपर ख़तम हो जाने के दृश्य देखे। वहां खरीदारी में अफरा तफरी मच गयी। ऑस्ट्रेलिया की एक दुकान में हालात इतने बिगड़ गए कि पुलिस तक को बुलाना पड़ा, क्यूंकि टॉयलेट पेपर को लेकर घबराये हुए ग्राहकों के बीच बहस इतनी

---

[6] सन् 2017 के मध्य में यूके में रहने वाले 1,500 माता-पिता और उनके बच्चों के एक नमूने पर किए गए एक शोध के निष्कर्ष दर्शाते हैं कि लगभग प्रत्येक पाँच में से एक व्यक्ति (18 प्रतिशत) यह मानता है कि दूध सीधे फ्रिज या सुपरमार्केट से आता है। https://www.farminguk.com/news/survey-shows-a-third-of-british-children-don-t-know-where-milk-comes-from_46824.html. 2 मई 2020 को देखा।

[7] चार क्षेत्रों में कार्यरत श्रमिकों पर इस महामारी और उत्पादन में गिरावट का सबसे 'भीषण' प्रभाव पड़ा है। ये क्षेत्र हैं: खाद्य और आवास सेवाएँ (144 मिलियन श्रमिक), खुदरा एवं थोक व्यापार (482 मिलियन), व्यवसायिक सेवाएँ एवं प्रशासन (157 मिलियन), और विनिर्माण (463 मिलियन)। ये सभी मिलकर वैश्विक रोज़गार का कुल 37.5 प्रतिशत बनाते हैं और महामारी का प्रभाव सबसे तीव्र रूप से यहीं अनुभव किया जा रहा है। यह बात अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) के प्रमुख ने कही। https://news.un.org/en/story/2020/04/1061322

बढ़ गयी थी कि एक व्यक्ति ने उसी के चलते चाकू तक निकाल लिया।[8] विशेषज्ञों ने बताया कि पश्चिमी देशों में कभी आभाव और कमी नहीं रही है। ऐसे किसी भी संभावित संकट की आशंका ने उन्हें अचानक 'हमारे' जैसे व्यवहार करने पर मजबूर कर दिया। इस पूरे परिदृश्य में व्यक्ति सचमुच विवश और सीमित दिखाई देने लगा।

हमारे अपने देश में भी यह स्पष्ट रूप से दिखने लगा कि कैसे गरीबों और सीमान्त वर्गों की चिंताएँ आसानी से मुख्यधारा की चेतना से गायब हो जाती हैं। लॉकडाउन ने समाज के विभिन्न वर्गों को अलग-अलग तरीकों से प्रभावित किया। प्रवासी मज़दूरों के अपने घरों की ओर पैदल लौटने की दुःखद कहानियाँ - जिनमें से कुछ तो घर पहुँचने से पहले ही दम तोड़ बैठे - हमारे सामाजिक आवरण की चमकदार सतह को चीर कर रख देती हैं।[9] दुनिया भर से घरेलु हिंसा की भी वारदातें सामने आने लगी हैं।[10] घर अब हर किसी के लिए एक सुरक्षित आश्रय नहीं रह गया है।

इस महामारी के दौर में समाजशास्त्रीय चेतना पहले से कहीं ज़्यादा प्रासंगिक लगने लगी है। महामारी और लॉकडाउन ने सामाजिक संरचना के आवरण उधड़ दिए हैं (जैसे बमबारी से उजड़ चुके घरों का वर्णन बर्जर करते हैं) और हमें यह स्पष्ट रूप से दिखता है कि न ही महामारी और न ही लॉकडाउन सभी देशों और क्षेत्रों को एक समान रूप से प्रभावित करेगा। स्वयं को अलग-थलग रखने, घर से काम करने, अपने बच्चों को घर पर पढ़ाने, ज़रूरी सामान इकट्ठा करने, स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच पाने, और महामारी के बाद अपने जीवन को आर्थिक और मानसिक रूप से दोबारा सँवारने की क्षमता - ये सभी बातें व्यक्ति की वर्ग, लिंग, प्रजाति, आयु, और भौगोलिक स्थिति पर निर्भर करती हैं।[11] संकट के इस क्षण में, समाजशास्त्रीय अनुकल्पना (सोशियोलॉजिकल इमेजिनेशन) हमें किस प्रकार परस्पर जुड़े हुए किन्तु भिन्न-भिन्न कार्यविधियों वाले यथार्थों को समझने और उनके 'आर-पार देखने' में सहायक हो सकती है?

****

अनुवादक:

[#]आयुषी शर्मा, सहायक आचार्य - समाजशास्त्र, मोदी विधि महाविद्यालय, कोटा

[##] त्रिभू नाथ दुबे, आचार्य - समाजशास्त्र, राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा

---

[8] https://metro.co.uk/2020/03/04/panic-buyer-pulls-knife-another-shopper-row-toilet-roll-12344873/ 2 मई 2020 को देखा.

[9] https://www.huffpost.com/entry/indian-migrants-coronavirus-walk-lockdown_n_5e843f87c5b65dd0c5d68b49 02 मई, 2020 को देखा

[10] https://www.nytimes.com/2020/04/06/world/coronavirus-domestic-violence.html.

[11] https://www.wilpf.org/covid-19-what-has-covid-19-taught-us-about-neoliberalis